लोक परम्परा एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक थाती : हाड़ौती अंचल

डॉ. ज्योत्स्ना श्रीवास्तव

सर्वप्रथम जानना होगा कि यह लोकपरम्परा है क्या है? साधारण शब्दों में Languageof Land जन–जन की बोली से उपजी भाषा जो लोकसाहित्य का अभिन्न हिस्सा बन जाती है। अर्थात् उसी बोली में संस्कृति पकड़ने की क्षमता का भाव जो कालांतर में लोकसाहित्य का अमिट सत्य बनने की क्षमता रखता है। भारत में कर्नाटक के बाद राजस्थान द्वितीय स्थान पर है, जहां सर्वाधिक वांङमय लोकसाहित्य सामग्री निरक्षर कंठ के ऊपर विराजमान है। असल में शास्त्र भाषा को परिमार्जित कर अपना मार्ग बनाता है। अतः शास्त्र की नींव लोकभाषा, बोली परम्परा में ही सन्निहित है। इसी कड़ी में हाड़ौती संभाग भी अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। अतः मुहावरों व लोकोक्तियों की लोक परम्परा से जीवन शैली से जुड़ी अनेकानेक बातें हमारे समक्ष उभर कर आती हैं। जिन्हें प्रस्तुत शोध लेख में रेखांकित करना आवश्यक है।

लोकसाहित्य की विभिन्न विधाओं का विस्तृत अध्ययन सदा प्रासंगिक है। लोकसाहित्य से सामाजिक जीवन स्वाभाविक रूप से उजागर होता है। गौरवपूर्ण लोकसाहित्य, लोकगीत, लोककथा, लोककहावतें, पहेलियां, लोकोक्तियां, मुहावरों आदि से समाज की यथार्थ छवि प्रस्तुत होती है। यदि इनको दोयम दर्जे का समझा गया तब ये मौखिक साहित्य भी अन्यथा बेजुबान होकर अंचल के किसी सूक्ष्म दायरे तक ही सिमट कर रह जाएंगे। अतः इसकी प्रस्तुति से सामाजिक सृजनशीलता में बेजोड़ आयाम स्थापित किये जा सकते हैं। लोक शब्द अपनी अर्थवत्ता में इतना अधिक व्यापक और गंभीर है कि उसके अन्तर्गत सामान्य जनसमुदाय से लेकर सम्पूर्ण विश्व अथवा चराचर लोक की अखिल सृष्टि समाविष्ट हो जाती है। उसके साथ साहित्य शब्द का समायोजन करने में लोकसाहित्य पद निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है लोकमानस की परम्परा से विरचित यह साहित्य जो जन–जन की वाणी से मुखरित होता है तथा जिसमें जीवन की सहज संवेदनाओं की अकृत्रिम अभिव्यक्ति होती है। जो स्वभावतः सत्य होती है। हाड़ौती का लोकसाहित्य भी इसी भांति यत्र–तत्र सर्वत्र हाड़ौती संभाग में बिखरा पड़ा है जिसे समेटकर एक रचनात्मक समाज का सच्चा आइना पेश किया जा सकता है, इसमें मुहावरों की महत्ता सदा प्रासंगिक रहेगी।

लोकसाहित्य के अन्तर्गत लोकगीत, प्रहेलिकाएं, लोकगाथाएं, लोकसमीक्षण आदि का विस्तृत अध्ययन कर समाज के विभिन्न पहलुओं खानपान, रहन–सहन, वस्त्राभूषण, तीज त्यौहार, मनोविज्ञान, विवाह, नीति संदेश आदि की निष्पक्ष–वस्तुनिष्ठ तस्वीर प्रस्तुत होती है। लोक परम्परा में मुहावरों से समाज को प्रगट करने का उद्देश्य यह भी है कि अंग्रेजी की सुगन्ध से कुछ दूर रहकर लोकसाहित्य पर पड़े पर्दे को हटाकर यथार्थ सामाजिक जीवन को समाज के समक्ष ला सकें। अतः मौखिक साहित्य को पूर्ण मुखरित एवं जीवट, जीवंत, सजीव, सहज एवं उपयोगी रूप देना शीर्षक अध्ययन का मूल उद्देश्य है। लोक परम्परा विशेषकर जिसमें मुहावरों में कहीं भी आडम्बर नहीं होता है।

अतः यह अतीत से लोक जिह्वा पर बैठी है। ये किसी जाति या वर्ग विशेष की थाती नहीं है। इनके लिये पूर्वाभ्यास की अत्यधिक आवश्यकता होती है। इनके मनोरंजन से बुद्धि विकास का आभास दृष्टिगत होता है। ये हाड़ौती अंचल के धार्मिक, समाजिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों के स्रोत हैं। यह बोली तत्कालीन और आज तक की साहित्यिक रुचि की झलक को स्पष्ट करती है तथा सामाजिक रीति–रिवाज जानने का एक सबल माध्यम है। यहां यह उल्लेखनीय है कि आमजन यदि उपाधिधारी या शिक्षित न भी था परन्तु व्यावहारिक ज्ञान एवं साहित्यिक पुट की उसमें कोई कमी नहीं थी। हाड़ौती लोक भाषा में ''ओरोबो'' नामक क्रिया चक्कर में डालने के अर्थ में प्रयुक्त होती है जिसमें से अनिर्वचनीय आनंदानुभूति होती है। हाड़ौती पहेलियों के काव्य सौंदर्य का अनुशीलन इस तरह किया गया है–

''डोड हात की नागणी, कान पकड़ताई
दूर राख्यां सूं छानी–मूंनी, हात लगाताई बोले।।

''सारंगी'' नाम के वाद्ययंत्र के लिये इस पहेली का प्रयोग किया गया है।

''भूरी भैंस भराड़ों माथो पकड़यो सींग–करयो अड्डाटो।'' अर्थात् भूरी भैंस है, जिसका चौड़ा सिर है, उसका सींग पकड़ते ही यह अर्राटा करने लगती है। यह आटा पीसने की चक्की है।

दीपक पर पहेली इस प्रकार कही जाती है–

पैलो पपय्यों पेली चोंच को, गटल गटल रस लेया''

इस गटलको न मलै, चोंच वाला पपीहा कहा गया हैं, जो धीरे–धीरे तेलरूपी रस का पान करता है। यदि उसे रस की एक चुटकी भी न मिले तो वह तुरन्त प्राण छोड़ देता है।

इस भांति एक और पहेली जो प्रकृति से सम्बद्ध है–

''रंग भूरो बदन सांवलों, रही पानां की लार,

ग्यारा देवर छोड़गी, गई जेठ की लारा''

जिसका रंग भूरा है और बदन मुख सांवला है जो पत्तों के साथ रही। ग्यारह देवरों को छोड़कर जो जेठ के साथ गयी। (नींम की निंमोली)।

निंमोली जेठमास की समाप्ति पर उतर जाती है। वह अन्य ग्यारह महीनों को छोड़कर जेठमास के साथ समाप्त होती है। इस पहेली से कृषि की महत्ता एवं आश्रय का ज्ञान होता है। भौगोलिक पर्यावरण की धुरी संस्कृति व साहित्य को भी निर्धारित करती है।

आम के प्रति आर्कषण–

''हीरा रंग, पीला रंग ओर रंग टपकता है।

हे गोरी। तेरा पीहर में मन भटकता है।'' (आम)

''काली–का–काली बल्ली, लाल, लाल बच्चे

चालबा लागी बल्ली, हालवा लाग्या बच्चा।''

काली–काली बिल्ली है, जिसके लाल लाल–लाल बच्चे हैं। बिल्ली चलने लगी तो उसके बच्चे हिलने लगे। भावार्थ यह है कि राजस्थान के हाड़ौती अंचल का लोक साहित्य सरस, मधुर और कर्णप्रिय है। यहां के लोकगीत, लोकनृत्य, लोक कथाएं, लोककहावतें आदि इस क्षेत्र की थाती हैं। महिलाओं की कण्ठहार पहेलियां लोकजीवन की अनुभूतियों और संस्कृति को साक्षात् अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। ज्ञानावृद्धि के साथ बुद्धिविलास के सुहावने प्रयोग से श्रोता का मन निश्चित रूप से आह्लादित हो जाता है। ''फडै फारसी बेचे तेल, यो देखों करता को खेल'', ''कहो न बिवाई म्हॉकी फारसी, यांको अस्थ बताये।''

पहेलियों का काव्य की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं है। उत्तम काव्य न सही, पहेलियां अधम काव्य से आनन्दवर्द्धन की ''काव्यानुकृति'' के अन्तर्गत तो अवश्य आएंगी। ह्यूडसन के अनुसार सामान्य रुचि के आधार पर ठहरा ज्ञान अपनी प्रतिपादन शैली से भी साहित्य के अन्तर्गत आ जाता है। अतः पहेलियों का अध्ययन ह्यूडसन के अनुसार "Literature is composed of those books and of those books only, which, in the first place, by reason of the subject matter and their mode of treaty, are of general human interest, and in which, in the second place, the element of form and the pleasure which form gives are to be regarded an essential." काव्यानृकृति से ऊपर लोक परम्परा की थाती अत्यावश्यक ठहरायी जा सकती है।

मौखिक साहित्य को पूर्ण मुखरित एवं जीवट और जीवंत, सजीव, सहज एवं उपयोगी रूप देना शीर्षक अध्ययन का मूल उद्देश्य है। लोकपरम्परा विशेषकर जिसमें मुहावरों में कहीं भी आडम्बर नहीं होता है चूंकि आवरण की चूंकि कोई गुंजाइश नहीं होती है। अतः लोक परम्परा जो अतीत की बेबाक बयानबाजी करता है उसे इतिहास में निर्विवाद प्राथमिक स्थान दिया जाना चाहिये।

ये विरले मुहावरे, पहेलियां, लिखित–अखिलित साहित्य समाज व देश को नैतिक रूप से भी प्रेरित कर सकते हैं। लोक परम्परा से शैक्षणिक जगत में नव्य आयाम स्थापित किये जा सकते हैं। लोकसाहित्य से समाज को प्रगट कर शिक्षा के महत्व को नवीन विधान के रूप में भी पेश कर जन की जड़ों से जोड़ा जा सकता है। फलस्वरूप इसकी महत्ता दर्शन जगत से भी स्थापित हो सकती है। अतः प्रहेलिकाओं से हाड़ौती अंचल ही नहीं सर्वत्र लोकसहित्यिक समाज विषयक शैक्षणिक महत्ता का समावेश होगा। लोकसाहित्य परम्परा के प्रवाह में सदा जीवित व अमर रहेगा। दृष्टव्य यह भी है कि लोकपरम्पराएं लोकस्मृत्ति में साधारण नाम ही समाविष्ट होते हैं। निःसंकोच स्मृत्तियों में साधारण नाम याद रखे जाते हैं। जैसे लोकपरम्परा में संग्राम सिंह का कोई अस्तित्व नहीं हैं लेकिन राणासांगा को सभी जानते हैं। अतः स्मृत्तियों में पीढ़ी दर पीढ़ी लोककथाएं व परम्पराएं बोलियों के रूप में स्थायी होती हैं। उल्लेखनीय सत्य यह भी है कि लोकसाहित्य, परम्परा व बोली को प्रमाणिकता के जामे की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

पद्मश्री श्री चन्द्रप्रकाश देवल ने राजस्थान अध्ययन केन्द्र द्वारा आयोजित कार्यशाला में स्पष्ट रूप से कहा कि 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के इस विद्रोह की चर्चा तत्कालीन व कालान्तर के लोकसाहित्य में अधिक उपलब्ध होती है। ब्रिटिश सरकार ने सावरकर की सम्बन्धित किताब (भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम) जो जन–जन की आवाज का आह्वान करते हुये देश की पूर्ण आजादी का बिगुल बजा रही थी, देश से बाहर भेज दिया था। तथापि लोकवाणी ने मंगल पांडे हो या तांत्या टोपे अथवा रानी लक्ष्मी बाई किसी के बलिदान को कभी व्यर्थ नहीं जाने दिया। मंगल पांडे को अंग्रेजों ने विद्रोही आतंकवादी ठहराकर फांसी के फन्दे से लटकाया, ब्रिटिश दस्तावेजों में उसी मंगल पांडे को भले ही शूरवीर क्रांतिकारी न माना हों परन्तु लोकवाणी ने इतिहास में उनके बलिदान को अपने उद्गार से अजर अमर बना दिया। अतः लोकसाहित्य में एवं अन्य स्रोतों में देश की आजादी के प्रतीक मंगल पांडे की विस्तृत गाथा यत्र तत्र सर्वत्र अमोघ स्तम्भ के रूप में खड़ी है। अतः स्वनामधन्य लोक परम्परा (लोकसाहित्य) को किसी के प्रमाणिकता के जामे की आवश्यकता नहीं है।

विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
राजकीय पी.जी. कला महाविद्यालय, दौसा

सन्दर्भ ग्रंथ विस्तार :

i नानूराम संस्कर्ता, राजस्थानी लोकसाहित्य, प्रस्तावना, राज–ग्रंथागर, जोधपुर, 2000

ii कन्हैयालाल शर्मा, हाड़ौती बोली और साहित्य, प्रस्तावना, पृ. 1

iii कन्हैयालाल शर्मा, हाड़ौती बोली और साहित्य, प्रस्तावना, पृ. 1

iv फ्रेजर दी गोल्डन बाऊ भाग, भाग 9, पृ. 121

v नाथूलाल पाठक, हाड़ौती लोक प्रहेलिकाएं, 1989

vi नाथूलाल पाठक, हाड़ौती लोक प्रहेलिकाएं, 1989

vii कन्हैया लाल शर्मा, हाड़ौती बोली और साहित्य, पृ. 264

viii कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसाहित्य की भूमिका, पृ. 164

ix Hudson, An Introduction to the Study of Literature, p.10

x डॉ. पद्मश्री प्रो. श्री चन्द्रप्रकाश देवल, व्याख्यान माला, कार्यशाला 11/11/2017

xi डॉ. पद्मश्री प्रो. श्री चन्द्रप्रकाश देवल, व्याख्यान माला, कार्यशाला 11/11/2017

अन्य संदर्भ ग्रन्थ : (राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर कोटा भण्डार बांण्याबहियां– बनियों द्वारा लिखित)

1. कोटा भण्डार नं. 1, बस्ता नं. 64, पुण्यार्थ बही, 1782 ई.।

2. कोटा भण्डार नं. 6, बस्ता नं. 22, पुण्यार्थ बही, 1800 ई. से 1804 ई. तक।

3. कोटा भण्डार नं. 5, बस्ता नं. 6, रीतिकरावर बही, 1779 ई.।
4. कोटा भण्डार नं. 19, बस्ता नं. 17, तनखर्च श्रीकृष्ण भण्डार, 1879 ई.।
5. कोटा भण्डार नं. 18, बस्ता नं. 6, तनखर्च बही, 1838 ई.।
6. कोटा भण्डार नं. 1, बस्ता नं. 60, ''दावेकी पर्चीजात'', 1773 ई.।
7. कोटा भण्डार नं. 1, बस्ता नं. 57, पुण्यार्थ बही, 1700 ई.।
8. कोटा भण्डार नं. 8, बस्ता नं. 15, मेला बही, 1769 ई.
9. कोटा भण्डार नं. 20, बस्ता नं. 4, जनानी ड्योढ़ी बही, 1792 ई.